भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-7, अंक-2-3	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-10.00
शुक्रवार, 25 मार्च' 83	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.00

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

परावाणी में आशीर्वाद

''हाँ, जूनागढ़ का मन्दिर तो हमारा ही है।''

महाराज का सामीप्य छोड़ कर महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए स्वामी जब जूनागढ़ जाने लगे, तब महाराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वैखरी से नहीं, परावाणी से भी पर वाणी में स्वामी को महाराज ने आशीर्वाद यह दिया।

महाराज द्वारा स्वामी का महिमा गान

वास्तव में महाराज केवल जूनागढ़ का मंदिर ही निर्माण नहीं कर रहे थे। साधुओं का भी निर्माण कर रहे थे और गुणातीतानंदस्वामी की महिमा भी प्रतिष्ठित कर रहे थे।

गुणातीतानंदस्वामी की महिमा तो स्वयं महाराज ने बार-बार स्पष्ट करी थी।

एक बार की बात है; नाजा भगत ने कहा था: ''महाराज ! यह गुणातीतानंदस्वामी आपको ही अखंड स्मृति में रखते है।'' तब महाराज ने उत्तर दिया था:

''नाजा ! वह तो हमारा निवास–अक्षरधाम हैं....जितना हमारा और उनका सम्बन्ध है इतना किसी का नहीं है।

फिर नाजा ने पूछा: ''महाराज ये सब साधु संत और हरिभक्त आपके नाम की माला जपते हैं। किन्तु मैं देखता हूँ कि आप भी माला लेकर जप करते हो; तो क्या आप भी 'स्वामिनारायण...स्वामिनारायण' का जप करते हो?''

महाराज का उत्तर था: ''हम जप अवश्य और निरन्तर करते हैं परन्तु गुणातीतानंदस्वामी जैसे भक्त का जाप जपते हैं।''

यह कोई सामान्य बात नहीं है। यहां भगवान, भक्त और भक्ति का एकी-करण हो गया। यहाँ अक्षरपुरुषोत्तम का ऐक्य स्थापित हो गया। यहां गढ़डा जूनागढ़ एक हो गये !

महाराज के तो ऐसे अनेक उद्‌गार है जिनके माध्यम से गुणीजन को स्पष्ट हो जाता है कि अक्षर और पुरुषोत्तम एक है; स्वामी और नारायण एक है और यही तो है युगल उपासना का असली कारण। अक्षरपुरुषोत्तम युगल होते हुए भी एक है और एक होते हुए भी युगल है !

महाराज सोरठ प्रदेश को धर्म-प्राण करने के लिए गुणातीतानंदस्वामी को अपने से बार-बार अलग करके जूनागढ़ भेजते थे। महाराज के यह परमोद्देश्य की

प्राप्ति के लिए स्वामी भी उनकी अनुवृत्ति में रह कर जब-जब महाराज कहते थे तब प्रसन्न होकर जूनागढ़ चले जाते थे और विघ्न होते हुए भी पद-पद पर महाराज के आशीर्वाद से मंदिर निर्माण-कार्य आगे बढ़ाते रहते थे।

मंदिरों का प्रशासन

महाराज असाधारण कुशल प्रशासक (एड्मिनिस्ट्रेटर) थे और भूत-वर्तमान-भविष्य के मालिक थे। कुशल प्रशासक कभी कार्य का सारा बोझ अपने पर नहीं रखता हैं। कार्य-भार बाँटने में दो लाभ हैं। एक तो एक व्यक्ति बोझ से दब नहीं जाती हैं और दूसरी और अन्यों को भी प्रशासन का अनुभव होता हैं। वह नेता ही नहीं है जो स्वंय नेता हो और अन्य सब केवल अनुयायी हैं। विभिन्न क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के नेता उत्पन्न करने वाला ही वास्तव में नेता है।

कालजयी महाराज यह भी जानते थे कि मुझे यह जीवन लीला शीघ्र समाप्त करनी है। इतना ही नहीं जो-जो प्रवृत्तियाँ आरम्भ कर रहा हूँ इनको सदा काल चलानी है। अतः प्रारम्भ से ही वे कुशल संचालकों में कार्य बांटते ही रहते थे।

एक दिन महाराज वड़ताल में विराजमान थे। तब इनको विचार आया कि मंदिर का निर्माण तो हो रहा है, और अन्यान्य स्थानों पर होने का है। चलो, एक-एक मंदिर की व्यवस्था एक-एक संत को दे ही दूं। उनकी मनुष्य परीक्षक कुशल-प्रशासक बुद्धि ने शीघ्र निर्णय कर लिया और वड़ताल में जोबनपगी के निवासस्थान पर उपस्थित सब संतों और हरिभक्तों के समक्ष घोषणा की–

हमने जो-जो मंदिर निर्मित किए हैं उन सब मंदिर की व्यवस्था के लिए एक-एक संत की नियुक्ति करनी है। उस मंदिर का प्रशासक वह ही होगा और उसको ही उस मंदिर की संभाल रखनी है। हमने प्रत्येक मंदिर के प्रशासक-महंत की व्यवस्था सोच ली है। यूं कह कर महाराज शीघ्र एक के बाद एक नाम बोलने लगेः

(1) वड़ताल मंदिर के महन्तः
अक्षरानंदस्वामी।

(2) भुज (कच्छ) मंदिर के महन्तः
वैष्णवानंदस्वामी।

(3) गढ़डा मंदिर के महन्त :
विरक्तानंदस्वामी।

(4) अमदाबाद मंदिर के महन्त :
सर्वज्ञानंदस्वामी।

(5) धोलेरा मंदिर के महन्त :
अद्भुतानंदस्वामी।

(6) धोलेका मंदिर के महन्तः
अनिरुद्धानंदस्वामी।

और पास में बैठे हुए ब्रह्मानंदस्वामी को संबोधित करके कहा कि आप मूली गांव में मंदिर-निर्माण करना और उसके बारे में भी घोषित कर दियाः

(7) मूली मंदिर के महन्त :
तद्रूपानंदस्वामी।

जूनागढ़ के मंदिर के महंत कौन?

महाराज की इस घोषणा को सुनकर ब्रह्मानंदस्वामी अत्यंत प्रसन्न हो उठे और महाराज को संबोधित करते हुए कहाः ''महाराज यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। बहुत अच्छी व्यवस्था की। किन्तु एक महत्वपूर्ण बात आप भूल ही गये।''

महाराज मंद स्मित करके बोले, ''स्वामिन् ! क्या रह गया?''

तब ब्रह्मानंदस्वामी ने कहाः ''जूनागढ़ में भी मंदिर बन रहा है, वहां के महंत की भी नियुक्ति करनी होगी। महाराज ने मंद हास्य किया किन्तु कुछ बोले नहीं। तब ब्रह्मानंदस्वामी ने कहाः ''जूनागढ़ के मंदिर के मंहत की नियुक्ति सोच-विचार करके करनी

चाहिए।'' महाराज के चेहरे पर प्रश्नमुद्रा आई, तब ब्रह्मानंदस्वामी ने कहाः

1. राज्य मुसलमानी है।

2. अफसर लोग स्वामीनारायण के विरोधी हैं।

3. देश निर्धन है।

4. लोग विचित्र हैं।

यहां साधारण साधु का काम नहीं है और बार-बार महंतों का परिवर्तन करना ठीक नहीं होगा।''

अतः ऐसे संत और कुशल प्रशासक की महंत के रूप में नियुक्ति कीजिए कि सब कुछ संभाल सके। भगवान स्वामीनारायण तो मन में स्पष्ट थे कि क्या करना है।

महाराज ने ब्रह्मानंदस्वामी को आश्वस्त करते हुए कहा कि–''स्वामी ! चिंता मत कीजिए। जूनागढ़ में हम ऐसे अत्यंत सक्षम संत की महंत के रूप में प्रतिष्ठा करेंगे कि जो स्थायी रूप से वहां रह पायेंगे। परिवर्तन करना ही नहीं होगा। वे मंदिर की प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे। सबके साथ मिलजुल करके काम कर सकेंगे। हरिभक्तों की संभाल रख सकेंगे और उस प्रदेश में मंदिर के माध्यम से एकांतिक सन्तों और भक्तों की बड़ी फौज उत्पन्न करेंगे।

यह सुनकर ब्रह्मानन्दस्वामी अत्यंत प्रसन्न हो गये।

यह बात हुई थी संवत् 1883 को प्रबोधिनी एकादशी के दिन वड़ताल में।

गुणातीतानंदस्वामी की जूनागढ़ मंदिर के महंत के रूप में नियुक्ति

उसी वर्ष की चैत्री पूर्णिमा का समारंभ (समैया) गढ़डा में मनाया गया। इसमें सम्मिलित होने के लिए जूनागढ़ से गुणातीतानंदस्वामी भी आए थे और वडताल से ब्रह्मानंदस्वामी भी आये थे। अन्यान्य स्थानों से भी संत आये थे। महाराज ने सब सन्तों को बुलाया और सभा में ब्रह्मानंदस्वामी की ओर दृष्टि करते हुए कहा।

''वड़ताल में आप कह रहे थे कि जूनागढ़ मंदिर के प्रशासक-महंत की नियुक्ति करनी है और सोच-विचार कर करनी है। हमने उसी समय सोच लिया था किन्तु घोषणा आज यहाँ गढ़पुर (गढ़डा) में आप सब सन्तों के समक्ष करते हैं। बुलाइए निर्गुणानंदस्वामी को।'' नित्यानन्दस्वामी की मंडली में एक छोटा सा शिष्य निर्गुणानंद था। लोग उनको बुला लाये। तब महाराज ने कहा, ''यह नहीं, उस भादरा वाले निर्गुणानंद जो तीनों अवस्थाओं में हमारी मूर्ति को देखते हैं उनको बुलाइए।''

तब मुक्तानंदस्वामी ने कहाः ''महाराज ! उनका नाम तो गुणातीतानंदस्वामी है।''

महाराज हँस पड़े और फिर उन्होंने कहाः

''हाँ, वे ही, उनको बुलाइए।''

महाराज की आज्ञा पाकर स्वामी शीघ्र सभा में आये और मुक्तानंदस्वामी के पास बैठ गये। तब महाराज उठे और पहले तो सभा में चारों ओर घूमे और अंततोगत्वा जहां गुणातीतानंदस्वामी बैठे थे वहाँ पहुँच गये और अपने गले में जितने हार थे वे सारे उनके गले में डाल दिये और घोषणा की, ''यह हैं जूनागढ़ के महन्त।''

ये सब क्या हो रहा है यह भी स्वामी को तो मालूम नहीं था। महाराज की इस घोषणा को सुनकर वे तो दंग हो गए और कहने लगेः ''यह तो उपाधि है महाराज ! जूनागढ़ मन्दिर का प्रशासन किसी और को संभलवाए। मेरे लिए यह उपाधि रूप होगा और में नहीं कर पाऊँगा।

महाराज के कहा ठीक है। इस सभा में जो संत जूनागढ़ मंदिर का प्रशासन चलाने के लिये आपको उपयुक्त और समर्थ लगे उनको आपके गले की माला

पहना दीजिए और प्रशासन सुपर्द कर दीजिए। हमें तो आप ही योग्य लगते हो। सर्वारम्भपरित्यागी और अति विनम्र होने के साथ-साथ असाधारण आज्ञापालक होने के कारण स्वामी कुछ बोल नहीं पाये।

महाराज खड़े थे, सारी सभा में मौन छा गया। स्वामी जी भी चुप्पी साधे हुए थे। विचित्र क्षण था। तब स्वामी के परम स्नेही गोपालानंदस्वामी सभा में उठकर महाराज के पास आये और स्वामी को कहाः

महाराज ने अत्यंत प्रसन्न होकर यह हार आपको दिया है तो आप ही रखिये।

महाराज स्वामी की परेशानी समझते थे अतः उन्होंने कहाः ''चिन्ता मत कीजिए। महंत आप, राजा आप....और.....यह गोपालानंदस्वामी आपका कार्य चलाएंगे। गोपालानंदस्वामी, अखंडानंद ब्रह्मचारी और परमानन्दस्वामी आपके वजीर। शीघ्र महाराज ने गोपालानंदस्वामी, अखंडानन्द ब्रह्मचारी और परमानन्दस्वामी की नियुक्ति स्वामी के सहकारी के रूप में कर दी।

बाद में महाराज ने अपने सारे वस्त्र स्वामी को दिये और अपनी पगड़ी उतार कर स्वामी के सिर पर रखकर राजा कहकर आशीर्वाद दिया। सर्वत्र जय जयकार हो गया

प्रसंग यह चल रह था कि अपनी सात्त्विकता, नम्रता ऋजुता आदि सात्त्विक गुणों का समर्पण भी महाराज को करना है और यह ही सच्ची उनकी आज्ञावशवर्तिता।

—क्रमशः

☆ ☆ ☆

....और श्रीजी महाराज ने कहा—

3. जिस व्यक्ति को अन्तर में भगवान की मूर्ति अखण्ड दिखाई पड़ती हो उसे भी चाहिए कि वह, भगवान के विभिन्न अवतारों द्वारा स्थान-स्थान में जो लीलायें की गई हो, उनकी स्मृति रखे और ब्रह्मचारी, साधुओं एवं सत्संगियों से प्रेम रखे। वह इसलिये कि देहत्याग के समय यदि भगावन की मूति विस्मृत हो जाये, तो भी भगवान ने जिन स्थानों में लीलाएं की हैं उनकी स्मृति हो जाये और सत्संगी या ब्रह्मचारी या साधु की स्मृति हो जाये तो उससे भगवान की मूर्ति का स्मरण आ सकता है और वह जीव उच्चपद को प्राप्त करता है और उसका कल्याण हो जाता है। इसीलिये हम बड़े-बड़े विष्णुयज्ञ करते है तथा जन्माष्टमी, एकादशी आादि व्रत एवं उत्सव प्रतिवर्ष करते हैं और उसमें ब्रह्मचारी, साधु, सत्संगियों को एकत्र करते हैं। यदि कोई पापी जीव भी हो और उसे अंतकाल के समय इन सबकी स्मृति हो जाये तो उससे उसे भगवान के धाम की प्राप्ति हो जाती है।

गढ़डा प्रथम प्रकरण—3

बुधवार, 23 नवं. 1819

4. भगवान के भक्तों को परस्पर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये।....यदि ईर्ष्या करनी भी है तो नारद जैसी करनी है।

एक समय नारदजी और तुम्बरु दोनों श्री लक्ष्मीनारायण के दर्शन के लिए बैकुण्ठ गये। तुम्बरू ने लक्ष्मीनारायण के सम्मुख गान किया। तब लक्ष्मीजी तथा नारायण दोनों ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने वस्त्र व आभूषण दिये। इस पर नारदजी को ईर्ष्या हुई। उन्होंने सोचा कि क्यों न मैं भी तुम्बरु जैसा ही गान-विद्या सीखूं और भगवान को प्रसन्न करूं?

तत्पश्चात् नारदजी ने गानविद्या सीखी और भगवान के सम्मुख गान किया। लेकिन भगवान ने कहा, 'आपको तुम्बरू जैसा गाना नहीं आता है।' तत्पश्चात् नारदजी ने शिव की तपस्या की और उनसे वरदान पाकर गानविद्या की शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने भगवान के सम्मुख गान किया लेकिन भगवान उनकी गानविद्या से फिर भी प्रसन्न नहीं हुए। इस प्रकार सात मन्वंतर तक गानविद्या सीखी और भगवान के सामने गाई तब भी भगवान प्रसन्न नहीं हुए।

तत्पश्चात् नारदजी तुम्बरु के पास ही गए और उनसे गानविद्या की शिक्षा प्राप्त करके द्वारिका में, श्रीकृष्ण भगवान के सम्मुख गान किया। तब श्रीकृष्ण भगवान प्रसन्न हुए और अपने वस्त्र-अलंकार नारदजी की दिये। तब नारदजी ने तुम्बरु से ईर्ष्या छोड़ दी।

इसलिए, यदि ईर्ष्या करनी हो तो ऐसी करनी चाहिये कि जिसके साथ ईर्ष्या हो उसके गुणों को ग्रहण करे और अवगुणों का त्याग करे और यदि ऐसा न कर पाये तो भगवान के भक्तों को उस ईर्ष्या को सर्वथा त्याग देना चाहिए जिससे कि भगवान के भक्त का द्रोह हो।

गढ़डा प्रथम प्रकरण-4
गुरुवार, 24 नवं. 1819

स्वामी की बातें

16. शास्त्र में बहुत भारी-भारी प्रायश्चित बताये हैं वे सब इस साधु के समागम और दर्शन से निवृत्त हो जाते हैं ऐसा यह दर्शन है।

प्र. : 1-54

17. ऐसे साधु जूते मारेंगे तब भी अक्षरधाम में ले जायेंगे और दूसरे रेशमी गद्दों में भी सुलाये तब भी नर्क में डालेंगे यह समझ रखना।

प्रः 1—57

18. हमारे दोष तो महाराज ने टाल दिये हैं और उन दोषों का दर्शन होता है वह तो हमारे श्रेय के लिये हैं। ये अगर न हो तो जीवात्मा उन्मत्त हो जायें। और अब तो हमें भगवान को वश में करना है और भगवान जैसा सामर्थ्य प्राप्त करना है इसके लिए लगे हुए हैं।

16. करोड़ों कल्प (युग) के बाद यह बात हाथ आई हैं। किन्तु यह सत्संग राजा को, बिरादरी वाले को और घर वाले को जँचता नहीं है और इन्द्रियाँ एवं अंतःकरण को भी जँचता नहीं है। केवल जीवात्मा को ही जँचता है और माया तो बेचारी परेशान है कि यह तो मेरे हाथ से गया।

प्र.: 1-65

20. (व्रत, जप, तप आदि) साधन करके मर जायें तब भी वासना नष्ट नहीं होती है; वह तो बड़े संत के अनुग्रह से ही नष्ट होती है।

प्र. : 1-70

Regd. No. D (DN) 655

Statement about Ownership and other particulars about news paper

'भगवत-कृपा'– **'THE DIVINE GRACE'**

(Form IV Rule 8)

1. Place of Publication	:	Yogi Divine Society A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
2. Periodicity of its Publication	:	Monthly
3. Printer's Name	:	Sadhu Mukund Jivandas
Nationality	:	Indian
Address	:	Yogi Divine Society A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
4. Publisher's Name	:	
Nationality	:	As above
Address	:	
5. Editor's Name	:	
Nationality	:	As above
Address	:	
6. Owner's Name	:	
Nationality	:	As above
Address	:	

I, Sadhu Mukundjivandas, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd/-
Sadhu Mukundjivandas
Signature of Publisher

Date: 25th March, 1983

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	21.4.83	गुरुवार	रामनौमी, श्री स्वामिनारायण भगवान जयंती व्रत
2.	दि.	23.4.83	शनिवार	कामदा एकादशी, व्रत
3.	दि.	27.4.83	बुधवार	हनुमान जयंती

Published by Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 7128838
Printed at Thakkar printing press, 2588, Basti Punjabian, Subzi Mandi, Delhi-110 007